जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक

ककसाड़

वर्ष 11 अंक 121
अप्रैल, 2026
मूल्य : 25/- रुपए

ककसाड़
राष्ट्रीय मासिक पत्रिका

ISSN 2456-2211

दिल्ली से प्रकाशित

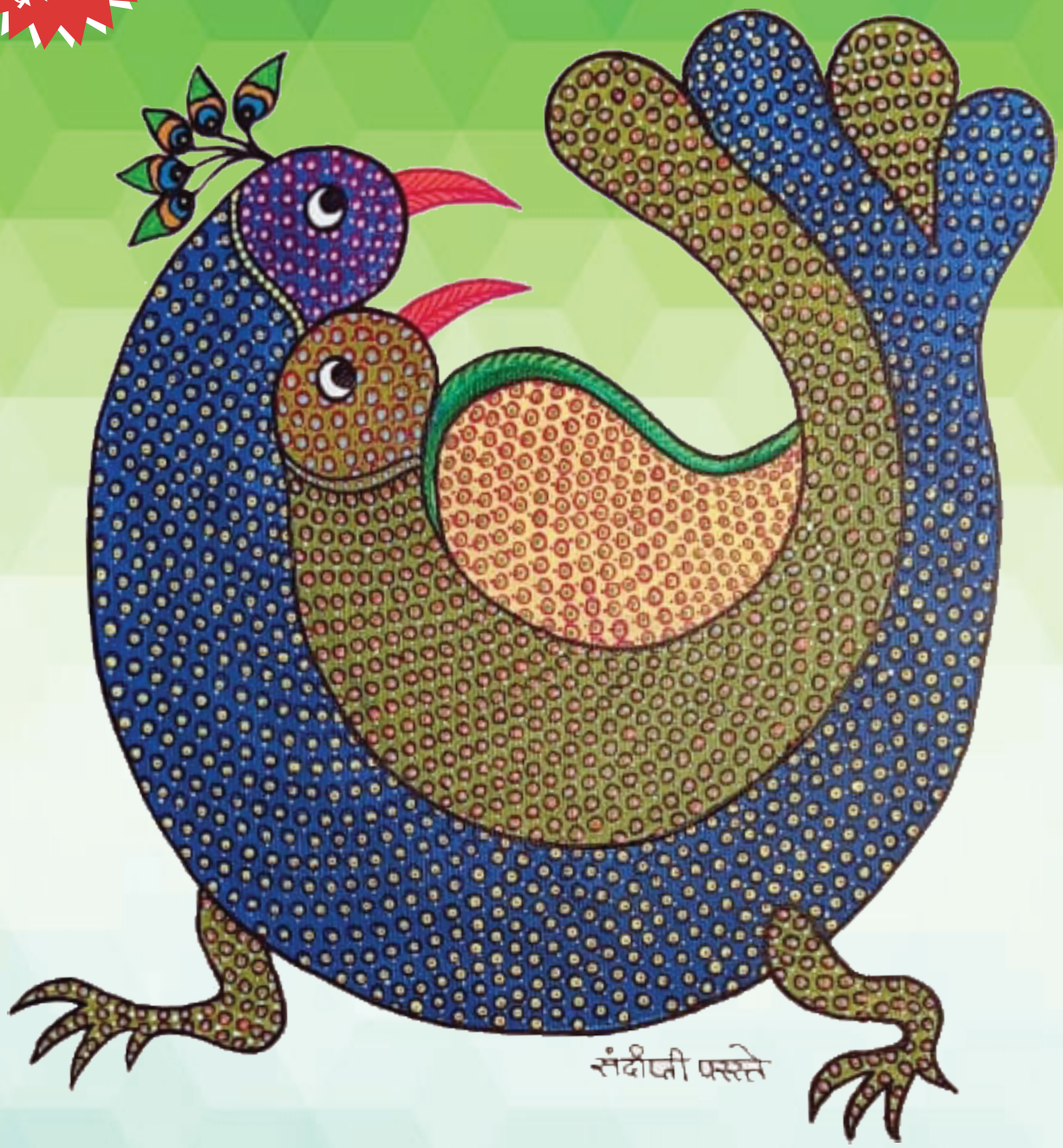

ककसाड़

(जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक)

अप्रैल 2026 **वर्ष-11 • अंक-121**

संस्थापना वर्ष 2015

प्रबंध एवं परामर्श संपादक
कुसुमलता सिंह

संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

कानूनी सलाहकार
फैसल रिजवी, अपूर्वा त्रिपाठी

•

ग्राफिक डिजाईन
रोहित आनंद

• मुख्य कार्यालय एवं रचनाएँ भेजने का पता •

सी-54 रिट्रीट अपार्टमेंट, 20-आई.पी. एक्सटेंशन,
पटपड़गंज, दिल्ली-110092

फोनः 9968288050, 011-22728461

•

• संपादकीय कार्यालय •

151, डी.एन.के. हर्बल इस्टेट, कोण्डागाँव, छ.ग.-494226

फोनः 9425258105, 07786-242506

ई-मेल : kaksaadeditor@gmail.com
kaksaadoffice@gmail.com

वेबसाइट : www.kaksad.com

मूल्य : **रु. 25** (एक प्रति), वार्षिक : **रु. 350/-** संस्था और पुस्तकालयों के लिए वार्षिक : **रु. 500/-** वार्षिक (विदेश) : **$110** यू.एस. आजीवन व्यक्तिगत : **रु. 3000/-** संस्था : **रु. 5000/-**

संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक

दिल्ली से प्रकाशित होने वाली 'ककसाड़' पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं जिनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।

• ककसाड़ से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे • **कुसुमलता सिंह** स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक।

अनुक्रम

दिल्ली लाइब्रेरी बोर्ड (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा पुरस्कृत

4. **संपादकीय**

साक्षात्कार

6. मेरी चित्रकला की प्रशंसा ही मेरा पुरस्कार है गोंड कलाकार **संदीप्ती परस्ते** से **कुसुमलता सिंह** की बातचीत

लेख

8. संचार के बीहड़ में कराहती संस्कृति : **संजय द्विवेदी**
10. आदिवासी साहित्य में संस्कृति और भारतीय परंपरा : **डुमन लाल ध्रुव**
12. भारतीय कला में लोक कला की अभिव्यक्ति : **कुसुमलता सिंह**
15. डिंडोरी के आदिवासी बैगा : **शैलेन्द्र चौहान**
17. ऐ मिरा हाल पूछने वाले, तुझ को अब तक मिरी खबर न हुई (नामवर सिंह की आलोचना-यात्रा) : **हिमांशु विश्वकर्मा**
22. किस्सा, किस्सागो एवं किस्सागोई : **राजेन्द्र सिंह गहलोत**
29. भारतीय ज्ञान प्रणाली में अनुसंधान और नवाचार के विविध आयाम : **आनंद दास**

कहानी

34. प्रेम : **अंतोन चेख़व**
38. खंडहर : **मनीषा मंजरी**

कविताएँ/ग़ज़ल

42. **दयाराम वर्मा** 43. **गुरमान सैनी** 44. **प्रदीप बहराइची**

शब्द चित्र

21. मैं इंद्रावती हूँ : **विनय शरण सिंह**

लघुकथा

45. आसमानी रंग का स्वेटर : **डॉ. लवलेश दत्त**

लोक पर्व

46. सरहुल प्रकृति से जुड़ा त्यौहार : **शैफालिका सिन्हा**

पुस्तक समीक्षा

49. चुने हुए शेर : **डॉ. पवन कुमार रावत**
7. **घोषणा**
14. **क्या है ककसाड़?**
20. **कहावतें**
37. **यादें**
49. **साहित्यिक समाचार**

आवरण कलाकृति - संदीप्ती परस्ते (गोंड कलाकार)
मो.: 77468-33572

संपादकीय

जब ककसाड़ का यह अप्रैल अंक आपके हाथों में पहुँचा है, तब तक इस वर्ष का वसंत मानो बिना दस्तक दिए आया और बिना रुके, खड़े पाँव, बिना औपचारिक विदाई के वापस लौट गया। सर्दी ने भी इस बार कोई भूमिका नहीं बाँधी और बिना गॉडफादर वाले अनुशासित नेता की तरह मंच की कुर्सी खाली कर सीधे उतर गई, और गर्मी बिना आमंत्रण के हाईकमान के दुलारे दबंग नेता की तरह मुख्य अतिथि की कुर्सी पर मिमियाते मौसम की छाती पर सवार हो गई।

वसंत के अधिष्ठाता कामदेव के पंचसर यानी कमल का फूल, अशोक के फूल, आम की मंजरी, नवमल्लिका यानी चमेली के फूल और नीलोत्पल यानी नीलकमल, ये पाँचों पुष्प-बाण केवल श्रृंगार के उपकरण भर नहीं रहे हैं, बल्कि भारतीय काव्य परंपरा के अत्यंत प्रभावी प्रतीक रहे हैं। इन्हीं के सहारे हमारे कवियों ने प्रेम, सौंदर्य, ऋतु-वर्णन, नायिका-भेद, मिलन-विरह और यहाँ तक कि मनुष्य के भीतर उठने वाले सूक्ष्म भाव-तरंगों को शब्द दिए हैं। परंतु इस बार जैसे ये सभी पुष्प-बाण तरकश में ही धरे रह गए...

न आम्र-मंजरी को ठहरकर निहारने का अवसर मिला, न महुए की गंध को मन भरकर पीने और आत्मसात करने का। वसंत इस बार कविता नहीं, एक रस्मी कानूनी ज्ञापन की तरह आया, पावती पर हमारे दस्तखत लिए और दस्तखत की स्याही सूखने के पहले ही चलता बना।

मौसम का यह उतावलापन केवल ऋतु परिवर्तन का प्रसंग नहीं है, यह हमारे समय की मानसिकता का आईना है। जब प्रकृति ठिठकना ठहरना भूलने लगे, तब समाज भी गहराई खोने लगता है। आज हम सब कुछ तेज और तुरंत चाहते हैं विकास भी, मनोरंजन भी, पहचान भी, और इसी जल्दबाजी में हम सबसे पहले अपनी जड़ों को, अपने वास्तविक स्वरूप को ही पीछे छोड़ देते हैं।

जनजातीय जीवन में वसंत कभी केवल मौसम नहीं था, वह स्मृति और परंपरा का उत्सव था। यह वह समय था जब गाँव केवल मानव बसावट मात्र नहीं, बल्कि एक जीवंत कुटुंब बनता था। परंतु आज एक नई प्रवृत्ति तेजी से उभर रही है, 'सांस्कृतिक प्रतिस्थापन' की । परंपरा को संरक्षित करने के नाम पर उसे मंच पर सजाकर, रंग-रोगन और कृत्रिम तड़क-भड़क के साथ प्रस्तुत कर दिया गया है, और जीवन से धीरे-धीरे अलग कर दिया गया है। अब गाँवों में उत्सव 'होते' नहीं, 'आयोजित' किए जाते हैं। अंतर सूक्ष्म है, पर अर्थ बहुत गहरा है। जहाँ पहले जीवन स्वयं उत्सव था, वहाँ अब उत्सव बाजार प्रायोजित 'कार्यक्रम' बन गया है।

एक दिलचस्प किंतु चिंताजनक तथ्य यह है कि पिछले कुछ वर्षों में कई जनजातीय क्षेत्रों में पारंपरिक गीतों की जगह मोबाइल पर डाउनलोड किए गए फूहड़ गीतों ने ले ली है। विभिन्न सर्वेक्षणों के अनुसार ग्रामीण भारत में स्मार्टफोन की पहुँच 60 प्रतिशत से अधिक हो चुकी है, और युवा पीढ़ी का बड़ा हिस्सा प्रतिदिन कई घंटे डिजिटल माध्यमों पर व्यतीत कर रहा है। इसके समानांतर स्थानीय बोलियों, लोकगीतों और मौखिक परंपराओं का उपयोग तेजी से घट रहा है। तकनीक आई, पर उसने संवाद का माध्यम ही बदल दिया। अब दादी की कहानी की जगह यूट्यूब का वीडियो ले रहा है।

संस्कृत का एक वाक्य यहाँ सटीक बैठता है, 'येन त्यक्तं न सज्जते।'

(अर्थात जिसे हम त्याग देते हैं, वह फिर हमारे पास नहीं लौटता।)

भाषा और संस्कृति भी कुछ ऐसी ही हैं। एक बार यदि वे जीवन और समुदाय से निकल जाएँ, तो उन्हें संग्रहालय में तो रखा जा सकता है, पर वापस जिया नहीं जा सकता। आज स्थिति यह है कि भारत की अनेक जनजातीय भाषाएँ 'दैनिक उपयोग' से हटकर 'शोध का विषय' बनती जा रही हैं। जब कोई भाषा विश्वविद्यालय के शोधपत्रों में अधिक और घर आँगन में कम सुनाई दे, तो समझ लेना चाहिए कि वह जीवित कम, संरक्षित अधिक है।

2011 की जनगणना के विश्लेषण से यह तथ्य सामने आया कि भारत में सैकड़ों भाषाएँ ऐसी हैं जिनके बोलने वालों की संख्या तेजी से घटकर कुछ हजार या उससे भी कम रह गई है। भाषाविदों का मानना है कि जब किसी भाषा के बोलने वालों की संख्या एक निश्चित सीमा से नीचे चली जाती है, तो उसका अस्तित्व गंभीर संकट में आ जाता है। यह केवल भाषा का संकट नहीं, बल्कि एक संपूर्ण ज्ञान-परंपरा के समाप्त होने का संकेत है।